

अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम ।  
 तस्मात्कारुण्य-भावेन रक्ष रक्ष जिनेश्वरः ॥८॥  
 नहि त्राता नहि त्राता नहि त्राता जगत्त्रये ।  
 वीतरागात्परो देवो न भूतो न भविष्यति ॥९॥  
 जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्दिने दिने ।  
 सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु भवे भवे ॥१०॥  
 जिनधर्मविनिर्मुक्तो मा भवेच्चक्रवर्त्यपि ।  
 स्याच्चेतोऽपि दरिद्रोऽपि जिन-धर्मानुवासितः ॥११॥  
 जन्म-जन्मकृतं पापं जन्म-कोटिमुपार्जितम् ।  
 जन्म-मृत्यु-जरा-रोगं हन्यते जिन-दर्शनात् ॥१२॥  
 अद्याभवत्सफलता नयनद्वयस्य,  
 देवः ! त्वदीय-चरणाम्बुजवीक्षणेन ।  
 अद्य त्रिलोकतिलकः ! प्रतिभासते मे,  
 संसार-वारिधिरयं चुलुकं प्रमाणम् ॥१३॥

### देव-स्तुति

(पं. बुधजन कृत)

(हरिगीतिका)

प्रभु पतित पावन, मैं अपावन, चरन आयो सरन जी ।  
 यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन-मरन जी ॥  
 तुम ना पिछान्यो आन मान्यो, देव विविध प्रकार जी ।  
 या बुद्धिसेती निज न जान्यो, भ्रम गिन्यो हितकार जी ॥  
 भव विकट वन में करम वैरी, ज्ञान धन मेरो हस्यो ।  
 तब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिस्स्यो ॥  
 धन घड़ी यो धन दिवस यो ही, धन जनम मेरो भयो ।  
 अब भाग्य मेरो उदय आयो, दरश प्रभु को लख लयो ॥  
 छवि वीतरागी नगन मुद्रा, दृष्टि नासा पै धरैं ।  
 वसु प्रातिहार्य अनन्त गुण जुत, कोटि रविछवि को हरैं ॥

मिट गयो तिमिर मिथ्यात मेरो, उदय रवि आतम भयो।  
मो उर हरष ऐसो भयो, मनु रंक चिंतामणि लयो॥  
मैं हाथ जोड़ नवाय मस्तक, वीनऊँ तुव चरन जी।  
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनहु तारन-तरन जी॥  
जाचूँ नहीं सुरवास पुनि, नरराज परिजन साथ जी।  
‘बुध’ जाचहुँ तुव भक्ति भव-भव, दीजिये शिवनाथ जी॥

## दर्शन-स्तुति

(श्री अमरचन्दजी कृत)

अति पुण्य उदय मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया।  
अब तक तुमको बिन जाने, दुख पाये निज गुण हाने॥  
पाये अनंते दुःख अब तक, जगत को निज जानकर।  
सर्वज्ञ भाषित जगत हितकर, धर्म नहीं पहिचान कर॥  
भव बंधकारक सुखप्रहारक, विषय में सुख मानकर।  
निज पर विवेचक ज्ञानमय, सुखनिधि-सुधा नहीं पानकर॥१॥  
तव पद मम उर में आये, लखि कुमति विमोह पलाये।  
निज ज्ञान कला उर जागी, रुचि पूर्ण स्वहित में लागी॥  
रुचि लगी हित में आत्म के, सत्संग में अब मन लगा।  
मन में हुई अब भावना, तव भक्ति में जाऊँ रँगा॥  
प्रिय वचन की हो टेव, गुणिगण गान में ही चित पगै।  
शुभ शास्त्र का नित हो मनन, मन दोष वादनतैं भगै॥२॥  
कब समता उर में लाकर, द्वादश अनुप्रेक्षा भाकर।  
ममतामय भूत भगाकर, मुनिव्रत धारूँ वन जाकर॥  
धरकर दिगम्बर रूप कब, अठ-बीस गुण पालन करूँ।  
दो-बीस परिषह सह सदा, शुभ धर्म दस धारन करूँ॥  
तप तपूँ द्वादश विधि सुखद नित, बंध आस्रव परिहरूँ।  
अरु रोकि नूतन कर्म संचित, कर्म रिपु को निर्जरूँ॥३॥